१०५ गाथा, नियमसार। निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार अर्थात् सच्चा चारित्र। रागादि दोषों का स्वभाव और आत्मा शुद्ध पवित्र आनन्दकन्द सच्चिदानन्दस्वरूप, उसका आनन्द और शान्तिरूप परिणमन अवस्था का होना, इसका नाम प्रत्याख्यान और इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। वह यहाँ पहले बात की। व्यवहारप्रत्याख्यान तो अज्ञानी को होता है। राग की मन्दता करे। होता है, वह तो मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध का (कारण है)। यहाँ आया है न, दूसरी लाईन? **इसीलिए निश्चयप्रत्याख्यान...** पृष्ठ २०४ टीका की दूसरी लाईन।

व्यवहारप्रत्याख्यान अर्थात् जिसके आत्मा का भान नहीं, आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्दस्वरूप है, ऐसा जिसे आत्मज्ञान नहीं, वह जीव मिथ्यादृष्टि राग और पुण्य को

अपना माननेवाला, उसे राग की मन्दता का कुछ पुरुषार्थ होवे तो उसे व्यवहारप्रत्याख्यान कहा जाता है परन्तु वह कुछ धर्म नहीं है। इसीलिए निश्चयप्रत्याख्यान-सच्चा राग का त्याग और सच्चा सच्चिदानन्द प्रभु ऐसा आत्मा, उसके आश्रय से-अवलम्बन से प्रगट हुई आनन्द की और शान्ति की निर्दोष दशा, वही प्रत्याख्यान **अति-आसन्नभव्य जीवों को हितरूप है;...** आहाहा!

अनादि अनभ्यास चैतन्य की जाति का। भगवान आत्मा तो शावश्त वस्तु है। सत्... सत् है वह और उसका शाश्वत स्वभाव तो ज्ञान और आनन्द है। अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द है, वह उसका स्वभाव, उसका—आत्मा का—स्वरूप है परन्तु उसका अभ्यास नहीं। अनादि राग और पुण्य-पाप की क्रियाओं के परिणाम जो कृत्रिम विकार अनित्य है, उसका अभ्यास है; इसलिए उसे आत्मा का नित्यपना और उसके अवलम्बन से होनेवाली शुद्धता की दशा कैसी होती है, इसकी उसे खबर नहीं है। कहो, सेठ! एक तो यह बाहर के धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता।

मुमुक्षु : नहा-धोकर पवित्र होकर तो आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ अभी वे लड़के काम करें, वे हमारी ओर से करते हैं और ठीक करते हैं, यह सब पतंग साथ में हाथ में रखकर बैठे हैं। पतंग... पतंग..। पतंग दूर उड़ती हो न, तो उसका डोरा हाथ में होता है।

मुमुक्षु : पतंग कब्जे में रहती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; जब खींचना हो, तब खींचे; छोड़ना हो तो छोड़ा जाए। ऐसा सब दुकान का धन्धा हम करते थे, राग, वे यह लड़के करते हैं, वह ठीक करते हैं, इसलिए बात तो वह की वह है। आहाहा! अरे..! इसने अनादि का सदोष विकारभाव का व्यापार किया है, बीड़ी का व्यापार नहीं, हों! तम्बाकू, बीड़ी का व्यापार, वह तो जड़ है, उसका कोई व्यापार कर नहीं सकता। उसमें होनेवाला राग और द्वेष का भाव, पुण्य-पाप का भाव, इसका इसने व्यापार किया। तब जो यह वस्तु है, वह तो नाशवान है, पुण्य-पाप तो नाश होने योग्य है; इसलिए उसका अर्थ यह कि पुण्य-पाप का भाव शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव में नहीं है। नहीं तो नाश होनेयोग्य नहीं हो सकता। शरीर, वाणी तो नाशवान है, यह तो अलग बात है। यह तो परवस्तु है, मिट्टी है परन्तु अन्दर में पुण्य-पाप का राग और विकल्प होता

है, वह अभाव किया जा सकता है, नाश किया जा सकता है। इसलिए वह चीज़ इसकी नहीं है। कहो, पोपटभाई! इसकी नहीं, उसका इसने व्यापार किया।

मुमुक्षु : यह चोर हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चोर है। आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द परमानन्द की मूर्ति आत्मा तो है। सत् शाश्वत् चिद् ज्ञान और आनन्द, ऐसा उसका स्वरूप है परन्तु अनन्त काल में कभी उसकी सम्हाल और पुरुषार्थ नहीं किया। आहाहा! इसलिए इसने पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभराग जो त्यागनेयोग्य है, इसके घर में नहीं है, उसका व्यापार किया; इसलिए चार गति में भटका है। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि अज्ञान में आत्मा के भान बिना कोई दया, दान, व्रत के परिणाम करे तो उसमें राग की कुछ मन्दता होवे तो इससे उसे अज्ञानी को व्यवहार-प्रत्याख्यान कहने में आता है परन्तु वह तो कहीं जन्म-मरण को टालने का हेतु नहीं है। वह तो कर्म के बन्ध और कारणरूप हेतु है। आहाहा!

इसीलिए निश्चयप्रत्याख्यान... ऐसा कहते हैं। इस कारण निश्चय अर्थात् सच्चा आत्मा का स्वरूप जो आनन्द और ज्ञान है, उसकी दशारूप परिणमित होना, होना और पुण्य-पाप के राग के अभावरूप होना, वह सच्चा त्याग और सच्चा धर्म और सच्चा चारित्र कहने में आता है। भारी सूक्ष्म, भाई! अरे! यह निश्चयत्याग अर्थात् राग का अभाव और भगवान आत्मा निर्दोष पवित्र का पिण्ड प्रभु, उसमें से प्रगट हुई पवित्रता, यह पवित्रता, वह मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : जब तक सच्चा समझ में न आये तब तक....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अज्ञान से करता है। उसमें विशिष्टता की क्या बात हुई? यह तो किया है। यह बात करते हैं। अनादि से चार गति में घानी में पिलता है, ऐसा इसने किया है। आहाहा! अरे! जिसका निजस्वरूप पवित्र और आनन्द का धाम प्रभु, उसके सन्मुख देखे बिना पर के सन्मुख देखकर पुण्य और पाप, राग और द्वेष, संकल्प और विकल्प किये हैं। यह तो अज्ञानी अनादि से करता है और उससे चार गति में भटकता है। आहाहा! यह कहीं नयी चीज़ नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं यह व्यवहारप्रत्याख्यान भी कोई नयी चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं और यह हितरूप भी नहीं है। ऐसा हुआ न भाई! इसमें? यह हितरूप नहीं है। आहाहा! आत्मा के भान बिना, अनुभव बिना जो कुछ राग का क्रियाकाण्ड—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, (करुणा, कोमलता किये), वह कुछ हितरूप नहीं है। आहाहा! जो आसन्न भव्य जीव है, जिसे निकट में मुक्ति का मार्ग और मुक्ति जिसे नजदीक है, आहाहा! ऐसे जीव को तो सच्चा त्याग अर्थात् राग का अभाव और निर्दोष स्वभाव का सत्यपना प्रगट होना। आत्मा जैसा निर्दोष पिण्ड है, उसमें से निर्दोषता स्व का आश्रय लेकर प्रगट हो, यह निर्दोषता वह अति आसन्न भव्य जीव को हितरूप है। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि जिस प्रकार सुवर्णपाषाण नामक पाषाण उपादेय है,... क्या कहते हैं? यह सोने का पत्थर निकलता है न? सोना होवे और पत्थर साथ में हो, उसे सुवर्णपाषाण कहते हैं। पश्चात् पिघलाकर पृथक् करते हैं न? पत्थर को पृथक् करते हैं और सोने को (पृथक् करते हैं)। वह **सुवर्णपाषाण नामक पाषाण उपादेय है,...** उसमें से सोना निकलता है। समझ में आया? और उस सोने के साथ में पत्थर है न? व्यवहार से वह उपादेय है। यह बात जरा ध्यान रखने जैसी है। अन्त में यह कहेंगे। समझ में आया? आगे कहेंगे। व्यवहार और निश्चय स्वीकृत है। १६० में कहेंगे। निश्चयप्रत्याख्यान और व्यवहारप्रत्याख्यान स्वीकृत करे। अन्तिम सार है न? उसका हेतु यह है, कहने का आशय ऐसा है कि जैसे स्वर्णवाला पत्थर, वह उपादेय कहने में आता है क्योंकि सोनासहित पत्थर है न? इसलिए उसे पृथक् करने के लिये वह उपादेय है। उपादेय समझ में आया? आदरणीय है। परन्तु वह राग व्यवहार में उपादेय... व्यवहारप्रत्याख्यान ऊपर आया न? ऊपर आया न? चार आहार का त्याग करे। उसके साथ यह सन्धि है। आहार के त्यागरूप प्रत्याख्यान व्यवहार से है। जरा सूक्ष्म बात है। आहाहा!

मुनिराज ऐसा कहना चाहते हैं कि जिसे भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति परमानन्द का धाम ऐसा जिसने दृष्टि में लिया है और स्वरूप में स्थिर हुआ है, उसे तो सच्चा पच्चक्खाण और सच्चा चारित्र कहते हैं, परन्तु वैसे चारित्र शुद्धता के भानसहित की भूमिका में चार (प्रकार के) आहार का त्याग आदि जो आता है, ऐसा विकल्प, वह भी एक व्यवहार-प्रत्याख्यान है। वह भी व्यवहार से आदरणीय कहा जाता है। व्यवहार से व्यवहार आदरणीय; निश्चय से निश्चय आदरणीय—ऐसा कहते हैं।

फिर से। ऊपर कहा था न? निश्चयसहित है, वह त्यागरूप प्रत्याख्यान है। जहाँ स्वरूप का अन्तर आनन्द और अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसका जहाँ अनुभव हुआ, आनन्द का अनुभव, शुद्धता की दशा वर्तती है, उसे जो व्यवहारत्याग का विकल्प आता है, उसे व्यवहारप्रत्याख्यान / व्यवहारत्याग कहने में आता है - ऐसा कहते हैं। अर्थात् कि **सुवर्णपाषाण नामक पाषाण उपादेय है, उसी प्रकार अन्धपाषाण नहीं है।** अर्थात्? जिसमें सोना नहीं है, वह पत्थर भी उपादेय नहीं है। व्यवहार से भी। अर्थात् **(यथोचित् शुद्धता सहित)...** देखो, आत्मा में ज्ञानानन्द और शुद्ध चैतन्यप्रभु का अन्तर आश्रय लेकर जो शुद्धता प्रगट हुई है, उस शुद्धतासहित **संसार तथा शरीर सम्बन्धी भोग की निर्वेगता निश्चयप्रत्याख्यान का कारण है...** समझ में आया? देवीलालजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात यह। जहाँ आगे शुद्ध प्रभु चैतन्यमूर्ति की शुद्धता जिसने अन्तर में चैतन्य को अनुभव करके, आत्मा का अनुभव करके और प्रगट शुद्धता की है, उस शुद्धतासहित **संसार तथा शरीर सम्बन्धी भोग की निर्वेगता निश्चयप्रत्याख्यान का कारण है...** यह सच्चा चारित्र और राग का सच्चा त्याग। समझ में आया? परन्तु वह अन्धपाषाण जो है, अकेला अन्धपाषाण अर्थात् निश्चय शुद्धता के भान बिना अकेली राग की मन्दता का त्याग व्यवहारप्रत्याख्यान, वह अन्धपाषाण है।

मुमुक्षु : व्यवहार से उपादेय....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से उपादेय नहीं। समझ में आया? धीरे से समझनेयोग्य (बात है) बापू! अनन्त काल में आत्मा वस्तु भगवान देह से भिन्न है और पुण्य-पाप के राग से भी भिन्न है, उस भिन्न की बात कहेंगे। भिन्न करने का अभ्यास। समझ में आया?

इस प्रकार अन्तर्मुख में जाकर और राग से भिन्न पड़ने की जो कला, वह जिसने प्रगट नहीं की, उसका रागादि की मन्दता का त्यागभाव अन्धपाषाण जैसा है। ऐई! व्यवहार अकेला अन्ध है, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : शुद्धता के साथ न हो, उसमें कुछ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धता के साथ होवे तो उस व्यवहार का आरोप कहा जाए, तो

व्यवहारप्रत्याख्यान कहा जाए। आहाहा! समझ में आया? भगवान जागकर देखा हो उसने। मेरी पूँजी, मेरे निधान में तो आनन्द और शान्ति और ज्ञायकता चैतन्यस्वभावभाव भरा है। ऐसी निज पूँजी को... ऐ... सेठ! यह तुम्हारी पूँजी-बूँजी को धूल को नहीं, ऐसा कहते हैं। वे सब दुःख के निमित्त हैं, तुम्हारी धूल। ऐ.. सेठ!

मुमुक्षु : तो क्या डाल देना नदी में?

पूज्य गुरुदेवश्री : डाल दी है, वह कहाँ डाल दे? इसने दी है? ममता ली है इसने तो। ममता। वह तो जिसके स्थान में है, वह पड़ी ही है। समझ में आया? आहाहा!

मुनि निश्चय और व्यवहार दो की सन्धि करते हैं। सोने का पत्थर सुवर्णपाषाण है। वह तो लेकर भेद करने की स्थिति करनी चाहिए। उसमें राग की मन्दता का भाव और राग के अभाव का भाव। उस शुद्धतासहित यदि यह होवे तो इसे व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उपादेय...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से उपादेय कहा न? व्यवहारनय से व्यवहार उपादेय है। इसलिए छठवें में कहेंगे, व्यवहारप्रत्याख्यान को स्वीकृत करते हैं-अंगीकृत। गाथा का अन्तिम योगफल है न? व्यवहार है न! व्यवहार है। व्यवहार से आदरणीय और व्यवहार से पालन करे, ऐसा भी कहने में आता है।

मुमुक्षु : व्यवहार से पूज्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से पूज्य है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य न हो तो भगवान त्रिलोक के नाथ भी पूजनीक नहीं हो सकते, व्यवहार से। पद्मनन्दि में यह आता है। पद्मनन्दि में पाठ आता है। व्यवहार से पूज्य है, ऐसा आता है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य है। निश्चय में पूज्य नहीं। आहाहा! दो वस्तु है न? दीपचन्दजी ने तो बहुत लिखा है। व्यवहार त्याज्य है, त्याज्य है परन्तु जिसे... नहीं तो तीन लोक के नाथ का भी त्याग हो जाएगा। अध्यात्म... वह क्या कहलाता है? पंच संग्रह। उसमें लिखा है। श्लोक है। दीपचन्दजी (ने लिखा है)। व्यवहार से व्यवहार है इतना; और पूज्य भी व्यवहार से कहा जाता है। निश्चय से दूसरी चीज़ है। निश्चय और व्यवहार दोनों को यहाँ

सिद्ध करना है न! समझ में आया? आहाहा! वाणी भी पूज्य है, ऐसा नहीं आया? पहले में निषेध किया और दूसरे में हाँ किया। किस अपेक्षा से?

मुमुक्षु : उसमें वापस.... निकाला, वह तो जड़ है, जड़ को कैसे...?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़ है परन्तु सर्वज्ञ अनुसारिणी है, ऐसा कहा। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा को अनुसरण करके अर्थात् निमित्त होकर बाहर आयी है। उसमें निमित्तपना वाणी में भगवान का ज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान का ज्ञान जड़ में कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आया है कहाँ? किसने कहा? निमित्त कहा न! देवीलालजी! ऐसा मार्ग है, भगवान! ऐ... पाटनीजी! देखो! इसमें है, सर्वज्ञ-अनुसारिणी। अनुसारिणी अर्थात् निमित्त को अनुसारिणी इतना। कहीं सर्वज्ञ के भाव वाणी में आये हैं? वाणी में तो वाणी के-जड़ के भाव हैं, परन्तु वह व्यवहार कहना है न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान वाणी में क्या आवे? वाणी तो जड़ है। जड़ के द्रव्य, गुण, पर्याय जड़ हैं। उनमें चैतन्य का अंश कहाँ से आया? यह तो उस वाणी के परिणमन के काल में सर्वज्ञ का ज्ञान निमित्त है, इतना लेकर, निमित्त अनुसारिणी है—ऐसा कहने में आता है। आहाहा! यह तो बात... वचन भी कथंचित् वस्तु... है न? कह सकती है वाणी, सर्वथा... अवक्तव्य है-ऐसा कहाँ होगा? भगवान तो विकल्परहित, आत्मा तो वाणीरहित है परन्तु उस काल में सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा हुआ। जो सर्वज्ञस्वभाव आत्मा में था, उसे घोलकर अन्दर में से सर्वज्ञपना पर्याय अन्तर में से प्रगट की, अब उसे वाणी उस काल में निकली, वह वाणी ऐसी ही होती है। उस वाणी में स्व-पर प्रकाशक कहने की ताकत है। स्व-पर जानने की ताकत नहीं। ताकत है। केवलज्ञानी का केवलज्ञान कैसा होता है, उसे कहने की वाणी में ताकत है, ऐसा कहते हैं। ऐई...!

मुमुक्षु : उसे भी उपादेय कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से उपादेय कहा। निश्चय से कहाँ है? सर्वज्ञ कैसे होते हैं, सिद्ध कैसे होते हैं? ऐसा वाणी में कहने की ताकत है, तथापि वह सिद्ध रूप और केवलज्ञान का रूप वाणी में कुछ नहीं आया। समझ में आया? आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। देखो न! इसलिए लिया न? स्पष्टीकरण किया है, पण्डितजी ने डाला है। **(यथोचित् शुद्धतासहित)...** अर्थात् सोनेवाला पत्थर, सुवर्णपाषाण। उसमें अच्छा स्वर्ण निकले, वह, हों! नहीं तो इस गिरनार के पत्थर हैं, उनमें सोना है परन्तु वह सुवर्णपाषाण क्या? सौ रुपये खर्च करे, तब साठ रुपये का सोना निकले। वह सोना क्या? उसमें तो सोना ऐसे एकदम पृथक् पड़े। पत्थर और सोना दोनों पृथक् पड़ जाएँ, ऐसा सुवर्णपाषाण। है न बड़ी खान? स्वर्ण की खान होती है न? जेठाभाई वे थे न? सोने के पत्थर लाकर पिघलाते थे। जेठालाल संघवी, मुम्बई, बोटादवाले। उन्हें यह सोने का धन्धा था। सुवर्ण के पत्थर लाकर उन्हें पिघलाते थे। पृथक् करते थे। इसी प्रकार निश्चय भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द का धाम, उसका जिसे भान, उसका जिसे भान, उसमें जिसकी स्थिरता की शुद्धता और उसके साथ राग का भाग व्यवहारप्रत्याख्यान, वह सुवर्णपाषाण है। वह राग है, वह पत्थर जैसा है और यह शुद्धता, वह स्वर्ण जैसी है। एक पर्याय के दो भाग सब लिये हैं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु अन्ध पाषाण, जिसमें सोना नहीं, ऐसी जिसमें शुद्धता, आत्मा पवित्र भगवान का जिसे भान, श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति नहीं, ऐसी शुद्धता के बिना त्याग का भाव अन्धपाषाण है। सेठ! यह समझने की दरकार ही नहीं की। हो और हाँ।

मुमुक्षु : दरकार तो बहुत की।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाने की। धूल इकट्ठी करने की करी थी। वह भी पुण्य के कारण मिली है, वह कहीं तुम्हारे पुरुषार्थ से नहीं मिली। तुम्हारा पुरुषार्थ तो राग का था। ऐ... सेठ! तुमने राग किया था। पूर्व का पुण्य था, इसलिए व्यवस्थित हो गया। आया, धूल दिखायी दी, बँगले दिखायी दिये। दिखायी दिये, हों! परन्तु दिखायी दिये, वहाँ कहता है (कि) मेरे हैं।

यहाँ कहते हैं कि जिसे अन्तर में राग और परवस्तु की मेरेपन की बुद्धि छूट गयी है और आत्मा पूर्ण आनन्दकन्द है, ऐसी बुद्धि और ऐसा ज्ञान जिसे हुआ है, ऐसी शुद्धतावाले का भाव, वह तो सच्चा प्रत्याख्यान है और उसमें चार (प्रकार के) आहार आदि का त्याग योग्यता प्रमाण ऐसा विकल्प है, वह व्यवहारत्याग कहलाता है। समझ में आया? आहाहा! होता अवश्य है न? मुनि को हमेशा आहार करने के बाद चार (प्रकार

के) आहार का त्याग कर दे। चौबीस घण्टे या ४८ घण्टे। यह तो व्यवहार हुआ, वह तो परलक्ष्यी विकल्प है। अन्दर शुद्धता... वस्तु जो अन्तर है, उसके अन्तर्मुख में जाकर जिसने पाताल में से-समुद्र में से मोती लाये, ऐसे शुद्धता प्रगट की है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति... शुद्धता प्रगट की है, वह सच्चा चारित्र और सच्चा धर्म है परन्तु उसके साथ ऐसे शुद्धतावाले को, पूर्ण शुद्धता नहीं, इसलिए व्यवहारत्याग का विकल्प उठता है, उसे व्यवहारप्रत्याख्यान कहा जाता है। कहो, पण्डितजी! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण नहीं। कारण-फारण नहीं। है, इतनी बात है। कारण-फारण नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। उसमें नहीं। निश्चयप्रत्याख्यान का कारण यह एक ही। निश्चय की बात है। व्यवहार कारण है, उसमें यह बात में उसमें है ही नहीं। क्या कहा? शुद्धतासहित **संसार तथा शरीर सम्बन्धी भोग की निर्वेगता निश्चयप्रत्याख्यान का कारण है...** यह निश्चयप्रत्याख्यान, यह इसकी बात है। संसार और शरीर सम्बन्धी भोग का त्याग वह व्यवहार और यह निश्चय, ऐसा नहीं। भाई! इन्होंने यह स्पष्टीकरण किया, यह नहीं। यहाँ तो स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द में रमणता आयी, इसलिए राग से निवृत्ति हो गयी, ऐसा। व्यवहार-फ्यवहार की बात यहाँ नहीं।

मुमुक्षु : निर्वेगता शब्द...

पूज्य गुरुदेवश्री : उस ओर हट गया है, इस ओर आ गया है, बस इतना। यह दोनों निश्चय है।

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार नहीं। दोनों निश्चय है।

मुमुक्षु : एक नास्ति है, एक अस्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। शुद्धता की दशा का परिणमना, अशुद्धता का अभाव होना, यह भी है एक ही निश्चय। समझ में आया? अरे! गजब बात! धर्म की बातें!

मुमुक्षु : शुद्धता पर भार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धता पर भार है। हाँ।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने तो कहा, महाराज! संसार शरीर भोग...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो है न! यह तो उसका स्वरूप है। इस ओर वेग है तो उस ओर वेग नहीं, बस। उसका अर्थ यह है। स्वभावसन्मुख का वेग है तो विकार सन्मुख का वेग नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा की पाट में चढ़ गयी हुई दृष्टि अर्थात् राग के पाट से हट गयी है। आहाहा! यह तो निश्चय है, सत्य है, यह सच्चा चारित्र है, सच्चा मोक्ष का मार्ग है। ऐसा सच्चे मोक्षमार्गसहित राग की मन्दता का भाव व्यवहार होता है, उसे व्यवहारप्रत्याख्यान, व्यवहारचारित्र, व्यवहारत्याग कहा जाता है। दोनों का ज्ञान कराया है न! समझ में आया? जैसा जहाँ हो, वैसा वहाँ जानना चाहिए। खींचतान करे तो वह कहीं वस्तु (नहीं है)। आहाहा!

और भविष्य काल में होनेवाले... यह प्रत्याख्यान है न? **भविष्य काल में होनेवाले समस्त मोह-राग-द्वेषादि विविध विभावों का परिहार, वह परमार्थप्रत्याख्यान है...** देखो, निश्चयप्रत्याख्यान का कारण और यह परमार्थप्रत्याख्यान अस्ति, अकेला लिया। **भविष्य काल में होनेवाले समस्त मोह-राग-द्वेषादि विविध विभावों का परिहार वह परमार्थप्रत्याख्यान है अथवा...** इसी और इसी का विस्तार करते हैं। यह इसमें तीन की बात करते हैं। **अनागत काल में उत्पन्न होनेवाले विविध अन्तर्जल्पों...** पुण्य-पाप के विकल्प, उनका **परित्याग, वह शुद्ध निश्चयप्रत्याख्यान है।** तीन प्रकार लिये। वस्तु तो वह की वह है। निश्चयप्रत्याख्यान कहो, परमार्थप्रत्याख्यान कहो, शुद्ध निश्चयप्रत्याख्यान कहो। अन्तर्जल्प विकल्प उठते हैं न? वृत्ति। यह छोड़ूँ, यह रखूँ—ऐसा विकल्प / राग। उस राग का भी जहाँ अन्दर त्याग और स्वरूप की अन्दर की सत्ता का सावधानरूप से प्रगट होना। आहाहा! मोह के अभावरूप सावधानी। समझ में आया? वह तो मुनिराज ने अधिक स्पष्टीकरण किया। निश्चयप्रत्याख्यान, परमार्थप्रत्याख्यान, शुद्ध निश्चयप्रत्याख्यान (एकार्थ है)। समझ में आया?

श्लोक-१४२

[अब, इस १०५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(हरिणी)

जयति सततं प्रत्याख्यानं जिनेन्द्र-मतोद्भवं,
परम-यमिना-मेतन्निर्वाणसौख्यकरं परम्।
सहज-समता-देवीसत्कर्णभूषण-मुच्चकैः,
मुनिप शृणु ते दीक्षाकान्तातियौवनकारणम्।।१४२।।

(वीरछन्द)

जिनमत में उत्पन्न हुआ जयवन्त सदा यह प्रत्याख्यान।
परम संयमीजन को करता शिव सुख यह उत्कृष्ट सुजान॥
समतादेवी के कर्णों का यह सुन्दर है आभूषण।
हे मुनिवर! तव दीक्षा-रमणी को अतिशय यौवन कारण॥१४२॥

[श्लोकार्थः] हे मुनिवर! सुन; जिनेन्द्र के मत में उत्पन्न होनेवाला प्रत्याख्यान सतत जयवन्त है। वह प्रत्याख्यान परमसंयमियों को उत्कृष्टरूप से निर्वाणसुख का करनेवाला है, सहज समतादेवी के सुन्दर कर्ण का महा आभूषण है और तेरी दीक्षारूपी प्रिय स्त्री के अतिशय यौवन का कारण है॥१४२॥

श्लोक -१४२ पर प्रवचन

[अब, इस १०५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:] यह टीका थी।

जयति सततं प्रत्याख्यानं जिनेन्द्र-मतोद्भवं,
परम-यमिना-मेतन्निर्वाणसौख्यकरं परम्।

सहज-समता-देवीसत्कर्णभूषण-मुच्चकैः,
मुनिप शृणु ते दीक्षाकान्तातियौवनकारणम् ।।१४२।।

श्लोकार्थ : **हे मुनिवर! सुन;...** देखो! मुनि, मुनि को कहते हैं। **हे मुनिवर! सुन; जिनेन्द्र के मत में...** जिन्हें सर्वज्ञपना प्रगट हुआ है, जिन्हें तीन काल-तीन लोक जानने में आये हैं और जिन्होंने राग तथा अज्ञान को जीत लिया है, ऐसे जो परमात्मा जिनेन्द्र, उनके मत में। ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर के अभिप्राय में **उत्पन्न होनेवाला प्रत्याख्यान सतत जयवन्त है।** आहाहा! सतत जयवन्त है। आहाहा! देखो! सम्यग्दर्शन जयवन्त वर्तता है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी अन्दर भान में प्रतीति जयवन्त है। ऐसे स्वरूप के आश्रय से हुई स्थिरता वर्तती है, कहते हैं जयवन्त है। आहाहा! समझ में आया? प्रत्याख्यान का अधिकार है न!

वीतराग परमेश्वर, जिनके राग बीता है, जीता है, टल गया है अर्थात् निर्दोष पूर्ण सर्वज्ञ और वीतरागदशा जिन्हें प्रगट हुई है, ऐसा जीव का / आत्मा का स्वरूप है। जैसा स्वरूप है, वैसा प्रगट हुआ। उनके मत में, उन्होंने जाना हुआ, देखा हुआ अभिप्राय में उत्पन्न होनेवाला। आहाहा! अर्थात् वीतराग ने कहा, वैसा आत्मा के स्वरूप का जिन्हें आनन्द के भान में आकर स्वरूप की लीनता प्रगट की, वह प्रत्याख्यान सतत-सतत निरन्तर चारित्र की वीतरागता वर्तती है, कहते हैं। आहाहा! मुनि स्वयं से बात करते हैं। खबर पड़ती है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन वर्तता है, सम्यग्ज्ञान वर्तता है, सम्यक्चारित्र वर्तता है-ऐसी खबर पड़ती है या केवली जाने? पण्डितजी! अभी कितने ही कहते हैं न?

मुमुक्षु : मिठाई खायेगा तो मुँह मीठा होगा ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : होगा। इसकी खबर नहीं पड़ती उसे? इसकी खबर नहीं पड़ती कि मुँह मीठा हुआ है? या किसी को खबर पड़ती है?

मुनिराज जरा गम्भीरता से बात करते हैं। जंगल में रहनेवाले भावलिंगी सन्त हैं। द्रव्य से नग्नदशा। जंगल में बसनेवाले सच्चे सन्त। आहाहा! जिन्होंने जन्म को सफल किया। जिन्होंने अवतार में अवताररहित दशा प्रगट की। जिनके भव में भव के अभाव की दशा प्रगट की। कहते हैं कि जयवन्त है, ऐसा कहते हैं। हमारे पास यह भाव वर्तता है, भाई! आहाहा! हम पूर्णानन्द के नाथ आत्मा, उसकी अन्तर में रमता, रमणता करते हुए जो

स्थिरता वर्तती है, निश्चयचारित्र की, निश्चय प्रत्याख्यान की (स्थिरता वर्तती है), वह जयवन्त है। समझ में आया? घर में पूँजी कितनी हो, यह इसके लक्ष्य में होती है या नहीं? सेठ! घर में कितनी पूँजी है? पचास-साठ-सत्तर लाख कहे, भले करोड़पति कहे। दोनों सेठों को करोड़पति कहते हैं, वहाँ। क्या कहलाता है तुम्हारा? बुन्देलखण्ड। फिर भले करोड़ न हो, साठ-सत्तर लाख हों, परन्तु ये दोनों व्यक्ति जानें। दूसरा कौन जाने परन्तु बाहर तो ऐसा कहे न? अधिक देखकर।

मुमुक्षु : आपके पास तो सब बात आ जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई कहता है। यहाँ कौन सुनता है। कोई बातें करे। ऐसा कहलाये। इतने पैसे हैं। करोड़पति कहलाते हैं। चाहे जितने कम हों, परन्तु सब करोड़पति (कहते हैं)। पचास लाख से ऊपर वह करोड़पति कहलाता है, ऐसी बातें लोग करते हैं।

मुमुक्षु : लोगों को....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कुछ अनुमान करनेवाले तो कितने ही होते हैं न! सब कहीं पागल होते हैं? सबको उड़ा देगा। समझ में आया? एक बार भाई ने बात नहीं की थी? मोहनभाई की। मोहनभाई घीया। मोहन घीया को कहे-घीयाजी, तुम्हें लोग करोड़पति कहते हैं। बहुत वर्ष की बात है, बहुत वर्ष की। यह मोहनलाल घीया अभी है न? राजकोट में। रतिभाई और वे करोड़पति लोग हैं। करोड़पति हैं न? अस्सी लाख है। मुझे करोड़पति कहते होंगे। यह तो बहुत वर्ष की बात है, हों! पन्द्रह-बीस वर्ष हो गये। यहाँ आये थे। ....लोग ऐसा कुछ सुनकर कहने आवे कि ऐसा कहते थे। ऐसी बात वहाँ चलती थी। यहाँ कहाँ घर में देखने गये थे!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! धन्य रे धन्य! मुनिराज को चारित्र वर्तता है, ऐसा उन्हें साक्षात् भान होता है। आहाहा! मुनिपना अर्थात् क्या? मोक्ष का साक्षात् मार्ग। वे तो अन्तर के आनन्द में रमणता में रमते होते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द की (जो) घूँट पीते हैं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि भी जब किसी-किसी समय ध्यान में अतीन्द्रिय आनन्द विशेष पीता है, तो यह तो मुनि! आहाहा! धन्य रे अवतार! जिन्होंने मोक्ष को निकट किया है। संसार को पीठ दी है। हट गये हैं। इस ओर आ गये हैं। मुक्तस्वरूप भगवान के पक्ष में चढ़ गये हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। भगवान के मार्ग में वर्तमान में चारित्र वर्तता है,

जयवन्त है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, पूनमचन्दजी! यह द्रव्यलिंगी है या भावलिंगी, भगवान जाने या स्वयं जाने?

मुमुक्षु : भावलिंगी हो, वह स्वयं जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु द्रव्यलिंगी को तो भान ही कहाँ है? भाई ने ठीक उतारा है। नहीं जानता। है नहीं और नहीं जानता, इसलिए वह तो ऐसा ही कहे न? वह ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! अरे!

मुनि सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने, जिन्होंने पूर्ण प्रत्यक्ष आत्मा किया है। आहाहा! आत्मा की भविष्य की दशा, समय-समय की केवलज्ञान की होनेवाली थी, वह भी जिन्होंने वर्तमान प्रगट कर डाली। समकिती को त्रिकाल आत्मा का ज्ञान है, तो इसका अर्थ यह कि भविष्य में जो केवलज्ञान होनेवाला है, सादि अनन्त पर्यायें (होनेवाली हैं), उसकी प्रतीति में में आ गया है, पूरा आत्मा प्रतीति करने पर (प्रतीति में आ गयी है)। समझ में आया? यह क्या कहा?

आत्मा माना न? आत्मा त्रिकाली माना न? तो त्रिकाली आत्मा अर्थात् भविष्य में केवलज्ञान तो है, है और है। उस केवलज्ञानसहित की पर्यायवाला जो आत्मा सादि-अनन्त और मोक्षमार्ग की पर्यायवाला सादि-सान्त और अज्ञान से अनादि-अनन्त, ऐसे पूरे आत्मा को जान लिया। समझ में आया?

मुमुक्षु : अनुभव सबको नहीं होता, ज्ञान है इतना।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब। परोक्षप्रमाण भी ज्ञान है न! अनुमान, वह प्रमाणज्ञान है या झूठा ज्ञान है? आहाहा!

यहाँ तो वर्तमान का भव बताते हैं न! उसमें तो त्रिकाल पूरा आत्मा आ गया है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा मानना अर्थात्? आत्मा तो त्रिकाली ध्रुव है, परन्तु अब उसकी पर्यायें जो भविष्य की सादि-अनन्त है, केवलज्ञान की पर्याय होनेवाली और सादि-अनन्त होनेवाली है। यह तो अनन्तवें भाग की है। अज्ञानदशा की पर्याय तो अनन्तवें भाग की है। अनादि-अन्त है। यह सादि-अनन्त है। पूरा आत्मा जिसने ध्रुव को प्रतीति में लिया, वह सब पर्याय का पिण्ड उसे प्रतीति में आ गया है। आहाहा! एक आत्मा जानने

पर। वह तो उसमें आता है न? भाई! प्रवचनसार, नहीं? ४८-४९ गाथा। एक आत्मा को जानने पर यह जाने। आत्मा किसे कहना? सब जाने। ४८-४९ प्रवचनसार। यह तो गाथा। भाई बंशीधरजी थे, उस दिन ये गाथा चलती थी। सेठ हुकमचन्दजी थे। बापू! तेरा मार्ग अलग, भाई! आहाहा! सब पर्यायों का पिण्ड, वह गुण और सब गुण का पिण्ड वह द्रव्य। द्रव्य में द्रव्य का ज्ञान होकर प्रतीति हुई, वह क्या नहीं हुई? उसे क्या बाकी रहा? आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ मुनिराज कहते हैं, अरे! मुनि! वीतराग परमेश्वर ने जो जाना और देखा तथा उन्होंने कहा, वैसा उनके मत में उत्पन्न, उनके मत में उत्पन्न होनेवाला, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शान्ति और स्थिरता तो वीतराग आत्मा है और वीतराग ने कहा, ऐसा है। उसमें यह निश्चयप्रत्याख्यान उत्पन्न होता है। आहाहा! गजब बातें!

वह प्रत्याख्यान परमसंयमियों को उत्कृष्टरूप से निर्वाणसुख का करनेवाला है,... आहाहा! आत्मा शुद्ध सचेतन प्रभु। सचेतन अकेला ज्ञायक का पिण्ड प्रभु। यह तो उसे तीन काल-तीन लोक को जानने की ताकतवाला सब पूरा तत्त्व। ऐसा जिसने वीतरागमार्ग में से जानकर, देखकर भाव निकाला है, वह निश्चयप्रत्याख्यान, **परमसंयमियों को उत्कृष्टरूप से निर्वाणसुख का करनेवाला है,...** यह मोक्ष का करनेवाला है। स्वरूप की अन्तर में रमणता चारित्र की (रमणता), वह मोक्ष का कारण है। बीच में व्यवहार हो, वह तो कहा बीच में। परन्तु वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा!

कहते हैं **सहज समतादेवी के सुन्दर कर्ण का महा आभूषण है...** आहाहा! जो वीतरागता, निर्दोषता / समता प्रगट हुई है, उसके सुन्दर कर्ण का महा आभूषण प्रत्याख्यान है। **और तेरी दीक्षारूपी प्रिय स्त्री...** दीक्षा अर्थात् वीतरागता प्रगट हुई वह। दीक्षा और प्रव्रज्या दो नाम साथ में डाले हैं न? नहीं है पीछे? समयसार। दीक्षा, प्रव्रज्या। सब बोल हैं। एक बोल में आता है। दीक्षा कहो या आत्मा की शान्ति की स्थिरता, वह दीक्षा। दीक्षा (अर्थात्) वस्त्र छोड़कर बैठे और हो गयी दीक्षा, (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : दो प्रकार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हो जगत को, परन्तु वस्तु यह है।

समतादेवी के सुन्दर कर्ण... सुन्दर कर्ण। कर्ण—कान। ऐसा वापस। उसका आभूषण। **तेरी दीक्षारूपी प्रिय स्त्री के अतिशय यौवन का कारण है।** आहाहा! क्या कहते हैं? जैसे यौवन में शरीर की पुष्टता होती है, वैसे निश्चयप्रत्याख्यान, निश्चय सच्ची वीतराग परिणति, वह दीक्षारूपी प्रिय स्त्री का अतिशय यौवन, युवादशा का कारण है। आहाहा! भाषा भी कैसी है! अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ प्रकाश होकर अतीन्द्रिय आनन्द वर्तता है, ऐसी जो दीक्षा, उसमें राग के अभावरूप और शुद्धता की समतारूपी स्थिरता, वह दीक्षा की यौवनवय की पुष्टि का कारण है। वह अतिशय यौवन का कारण है। आहाहा! यह १०५ गाथा हुई, लो!

मुमुक्षु : .....केवलज्ञान का कारण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो चारित्र की पुष्टि यौवन दशा है, ऐसा। निश्चयप्रत्याख्यान, वह चारित्र की यौवन दशा है। चारित्र की पुष्ट दशा है। हृष्ट-पुष्ट होता है। निश्चयप्रत्याख्यान से चारित्र हृष्ट-पुष्ट होता है। आहाहा! है तो वह का वह भाव परन्तु बताते हैं न! १०६ गाथा, यह प्रत्याख्यान की अन्तिम गाथा है।

गाथा-१०६

एवं भेदब्भासं जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्चं।
पच्चक्खाणं सक्कदि धरिदुं सो संजदो णियमा।।१०६।।

एवं भेदाभ्यासं यः करोति जीवकर्मणोः नित्यम्।
प्रत्याख्यानं शक्तो धर्तुं स संयतो नियमात्।।१०६।।

निश्चयप्रत्याख्यानाध्यायोपसंहारोपन्यासोऽयम्। यः श्रीमदर्हन्मुखारविन्दविनिर्गत-परमागमार्थविचारक्षमः अशुद्धान्तस्तत्त्वकर्मपुद्गलयोरनादिबन्धनसम्बन्धयोर्भेदं भेदाभ्यासबलेन करोति, स परमसंयमी निश्चयव्यवहारप्रत्याख्यानं स्वीकरोतीति।

यों जीव कर्म विभेद अभ्यासी रहे जो नित्य ही।
है संयमी जीन नियत प्रत्याख्यान-धारण क्षम वही॥१०६॥

अन्वयार्थ : [एवं] इस प्रकार [यः] जो [नित्यम्] सदा [जीवकर्मणोः] जीव और कर्म के [भेदाभ्यासं] भेद का अभ्यास [करोति] करता है, [सः संयतः] वह संयत [नियमात्] नियम से [प्रत्याख्यानं] प्रत्याख्यान [धर्तुं] धारण करने को [शक्तः] शक्तिमान है।

टीका : यह, निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार के उपसंहार का कथन है।

श्रीमद् अरहन्त के मुखारविन्द से निकले हुए परमागम के अर्थ का विचार करने में समर्थ ऐसा जो परम संयमी अनादि बन्धनरूप सम्बन्धवाले अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म-पुद्गल का भेद भेदाभ्यास के बल से करता है, वह परम संयमी निश्चयप्रत्याख्यान तथा व्यवहारप्रत्याख्यान को स्वीकृत (-अंगीकृत) करता है।

गाथा - १०६ पर प्रवचन

एवं भेदब्भासं जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्चं।
पच्चक्खाणं सक्कदि धरिदुं सो संजदो णियमा।।१०६।।

ओहोहो!

यों जीव कर्म विभेद अभ्यासी रहे जो नित्य ही।
है संयमी जीन नियत प्रत्याख्यान-धारण क्षम वही॥१०६॥

टीका : यह, निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार के उपसंहार का कथन है। यह पूरा है, यह गाथा... प्रतिक्रमण की व्याख्या आ गयी, प्रत्याख्यान की (आयी), पश्चात् आलोचना। वर्तमान की लेंगे। भविष्य का प्रत्याख्यान है न? विगत काल का प्रतिक्रमण, भविष्य का प्रत्याख्यान, वर्तमान का संवर, आलोचन।

श्रीमद् अरहन्त के मुखारविन्द से निकले हुए... आहाहा! स्वरूप की लक्ष्मीवाले अरिहन्त भगवान, जिन्हें ज्ञान में जगत की कोई चीज़-रहस्य बाकी नहीं हैं। सब रहस्य तीन काल-तीन लोक का ज्ञान स्वरूप की प्रगट दशा में सब भान आ गया है। ऐसे भगवान अरहन्त... अरहन्त... **मुखारविन्द से निकले हुए...** लो, भाषा आयी - मुखारविन्द में से। ओमध्वनि निकलती है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर होते हैं, उन्हें वाणी ऐसी होंठ नहीं बोलते, नहीं हिलते, कण्ठ नहीं काँपता। पूरे शरीर में से ॐ ऐसी ध्वनि उठती है। उसे यहाँ मुखारविन्द में से निकली, ऐसा कहते हैं। मुखरूपी अरविन्द—कमल। दुनिया में व्यवहार है न? इसलिए लिखा है। व्यवहार से बात की है। वरना तो निकलती तो ऐसे (पूरे शरीर में से है)। पूर्णदशा सर्वज्ञ परमेश्वर हुए, परमात्मा आत्मा में से पूर्ण शक्ति प्रगट की। परमात्मा होते हैं, उन्हें ऐसी वाणी नहीं होती, हम बोलते हैं ऐसी।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर तो ऐसा ही मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर तो एक ही मानते हैं, इतना। वह तो सब आता है। यह बात ऐसी है, इसके अतिरिक्त दूसरा समझ लेना। आहाहा! क्या हो?

मुमुक्षु : श्वेताम्बरों की मान्यता विपरीत है। मुँह से निकलती है, (ऐसा कहते हैं)।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी है। मुँह से बात करे महिलाओं के साथ, ऐसा कहते हैं। एक महिला है, राजा की लड़की। तीर मारा था और भगवान को प्रश्न किया है और सीधा उत्तर दिया है। भगवती में आता है। क्या नाम ? भूल गये। महिला आती है। तीर मारते हैं।

मुमुक्षु : मृगावती।

पूज्य गुरुदेवश्री : मृगावती। महिला का नाम है। भगवती में है। बहुत वर्ष हो गये न, अब उसे पढ़े हुए। महिला ने अठारह प्रश्न किये हैं। भगवान से प्रश्न (किये), भगवान सीधे जवाब देते हैं।

यहाँ तो तीर्थंकर की वाणी, उन्हें सहज ॐध्वनि निकलती है। किसी समय इन्द्र और नरेन्द्र, चक्रवर्ती, गणधर आदि के प्रश्न होवें तो ॐध्वनि निकलती है। ऐसी सहज दशा भगवान की मुख में से, इसीलिए कहते हैं, मुखारविन्द में से निकली हुई। उस वाणी को परमागम कहते हैं। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्ण पवित्र परमात्मदशा। देह में रहे होने पर भी जहाँ अन्तर प्रगट दशा हुई, और वाणी निकली। उसके **अर्थ का विचार करने में समर्थ...** यहाँ तो जरा दूसरा कहना है। एक तो परमात्मा वीतराग सर्वज्ञ सिद्ध किये, उनकी निकली हुई वाणी को परमागम सिद्ध किया और **ऐसा जो परम संयमी अनादि बन्धनरूप सम्बन्धवाले अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म-पुद्गल का भेद भेदाभ्यास के बल से करता है,...** उस परमागम में ऐसा कहा है कि राग का स्वभाव से भेद कर। राग से तेरे स्वभाव का भेद कर, ऐसा परमागम में कहा है। समझ में आया ?

एक तो देव सिद्ध किये। परमात्मा कैसे होते हैं, उनकी वाणी कैसी निकलती है और वाणी को परमागम कहने में आता है तथा उस परमागम में ऐसा कहने में आया है कि जितने विकल्प उठते हैं—दया, दान, व्रत, भक्ति या काम, क्रोध, वह कर्म। भगवान आत्मा कर्मरहित अकर्मस्वरूप है, इन दो के बीच में भेद डाल। दो को पृथक् कर, पृथक् (करने का) अभ्यास कर। यह उन्हें भिन्न करने का अभ्यास, यह उसका धर्म। आहाहा! एक तो अनादि से माना है। पुण्य-पाप का राग, विकल्प जो दया, दान, व्रत, वह तो राग है। उसे और आत्मा को एक माना, वह तो मिथ्यात्वभाव है।

परमागम भगवान की वाणी में ऐसा आया कि **परम संयमी अनादि बन्धनरूप सम्बन्धवाले...** देखो भाषा रखी। भेद डालना है, परन्तु सम्बन्ध है, ऐसा कहते हैं। **अनादि**

बन्धनरूप सम्बन्धवाले अशुद्ध अन्तःतत्त्व... विकारी पर्याय, ऐसा। अशुद्ध अन्तःतत्त्व **और कर्म-पुद्गल...** दो है न? इनको-दो को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है न? विकारी पर्याय और कर्म का उदय, दोनों को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। शुद्धता को, ध्रुव को कुछ सम्बन्ध नहीं है। क्या कहा, समझ में आया? कर्म का उदय जड़ और विकारी पर्याय, दो को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। यह अनादि बन्धनरूप सम्बन्धवाला। अशुद्ध तत्त्व अर्थात् विकारी पर्याय और पुद्गल। इनका **भेद भेदाभ्यास के बल से करता है,...** इनका भेद, भेदाभ्यास के बल से (करता है)। ऐसी दो बातें हैं। आहाहा! देखो! यह करने की क्रिया।

भगवान शुद्धस्वरूप पवित्र और पर्याय-अवस्था में अशुद्धता तथा कर्म का उदय, दोनों को जो ऐसे सम्बन्ध है, उसे अब छोड़, कहते हैं। पर से छोड़ अर्थात् अशुद्धता की पर्याय से भी पृथक् पड़ गया। उसके साथ दोनों को सम्बन्ध था। क्या कहा? अशुद्ध अन्तःतत्त्व लिया है न? दो जगह पहले आ गया है, पृष्ठ ८१ और पृष्ठ १५५। अशुद्ध अन्तःतत्त्व। भेद अभ्यास का अधिकार एक जगह, एक जगह अशुद्ध अन्तःतत्त्व। कहना जरा ऐसा है कि भगवान आत्मा तो शुद्ध अन्तःतत्त्व है परन्तु कर्म के उदय का सम्बन्ध अशुद्ध विकार के साथ है। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध इतने को है। त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव के साथ कर्म का यह निमित्त सम्बन्ध नहीं है। उसका भेद भेदाभ्यास के बल से करे। आहाहा! यह राग और निमित्त दो से मेरी चीज़ पृथक् है। ऐसा अन्तर्मुख में पर से हटकर स्वभाव का अभ्यास करना, इसे भेदज्ञान और यह धर्म की दशा प्रगट करने का कारण है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)